❐ डॉ० मंजुरानी सिंह

दिशा

प्रताप बाबू जब से कलकत्ते आए हैं उन्हें यहाँ एक ही चीज अच्छी लगती है, घर से रोज टहल कर लेक की तरफ आना, घूमना और बेंच पर बैठ जल को निहारना घंटों। इधर आते हुए उन्हें यह ब्रिज क्रॉस करना पड़ता है और तब ब्रिज के नीचे से आती-जाती ट्राम में रोज बच्चों और माँओं की भीड़ देखते हैं। अपने वजन से भी भारी बैग और पानी का फ्लास्क टाँगे हुए बच्चे। प्रताप बाबू टहलते हुए प्राय: सोचते हैं महानगर की ऐसी सुबह के बारे में। सुबह भी बंटी हुई है जैसे। बस-ट्राम चालकों की सुबह, बच्चों और माँओं की सुबह, चाय और मिठाई की दुकानों की सुबह और भिखारियों की सुबह मानो एक बार होती है – एकदम तड़के। दफ्तर, फैक्टरी आदि जाने वाले लोग तबतक सोए रहते हैं। उनकी सुबह साढ़े आठ बजे होती है। तब जो हड़बड़ी शुरु होती है कि क्या कहना। लोग दौड़े-भागे बस स्टाप पर पहुँचते और अपने को लाद देते हैं बसों में। प्रताप बाबू सुनते तो खूब हैं – इस लाइफ के बारे में जिसे ''फास्ट'' कहा जाता पर समझते जरा भी नहीं। इस 'फास्टनेस' को समझने का महत्व है अपने 'स्लोनेस' को समझें। अपने बचपन से लेकर अपने बुढ़ापे तक के स्लोनेस को। तब - जब कहीं दूर अजान के स्वर के साथ ब्रह्म मुहूर्त में माता-पिता दोनों ही उठ जाते थे और सम्मिलित कंठ से आराधते – शांताकारम भुजंगशयनम्, पदमनाभम्, सुरेशं.....और फिर या कुन्देन्दु तुषारहार धवला ..... वाली सरस्वती वंदना तो स्वर के आरंभ के साथ पाँचों भाई बहन उठ बैठते थे। सभी तुतले उच्चारण के साथ सम्मिलित हो जाते थे। प्रताप बाबू को अभी भी अपनी माँ याद आती है – एक विशिष्ट व्यक्तित्व के रूप में थी। वेद-उपनिषद का ज्ञान तो उन्हें बहुत बाद में हुआ पर माँ बचपन में ही वेद से एक अनुदित पाठ मीठे-सुरीले कंठ से गाती थी, उन्हें सिखलाती थी। माँ नहाधोकर पूजा पाठ में लग जाती थी और पिता बच्चों को लेकर खेतों की तरफ निकल जाते थे। तब कोई बाथरूम, लेट्रिन तो था नहीं सबको दूर गाँव के खेतों, बगीचों और नदियों की तरफ निकलना पड़ता था। रास्ते भर पिता बच्चों के रंग बिरंगे सवालों का जवाब देते चलते थे और दुनिया भर की नई-नई बातें, नई-नई जानकारियाँ भी देते थे। इसी कृषक पिता और गृहस्थ माँ ने उन्हें गाँव से बाहर शहर भी भेजा था पढ़ने को। शहर गाँव से पचास किलोमीटर दूर था। चार मील पैदल चल कर बस पकड़नी पड़ती थी, यह बस दिन में सिर्फ एक ही बार आती थी। तब चार बजे सुबह माँ उन्हें रोटी सब्जी बनाकर खिलाती और साथ बाँध भी देती थी। सबसे बड़े थे प्रताप बाबू और बुद्धि भी तीव्र थी उनकी। वैसे भी पिता का संस्कारित विश्वास था कि अगर बड़ा पाया संभल गया तो सब संभल जाएगा। माँ की महत्वाकांक्षा थी कि बेटा बड़ा अफसर बने। पिता को अपनी पत्नी से बेहद प्रेम था उनकी ऐसी इच्छाओं को पूरी करने की उन्होंने हमेशा कोशिश की। कोशिश का मतलब आज की तरह बैंकिंग या घूसघास थोड़े ही था, बस अच्छे संस्कार, सुविधा और खर्च देना भर था। जैसा कि गाँवों के लोगों के मन में एक ग्रंथि होती है कि वे गंवार हैं, अपढ़ हैं, प्रताप बाबू के पिता में भी थी। प्रतापबाबू को अपने पिता की इस भावना से ग्लानि होती थी। ये लगातार प्रथम श्रेणी पाने की कोशिश करते – पाते भी। उनकी स्पष्ट मान्यता थी कि भारत के पच्चीस-तीस प्रतिशत साक्षर लोग यहाँ के निरक्षर लोगों के कष्ट और त्याग का परिणाम हैं। इसीलिए अफसरी मिलने और शहरों में रहने के बावजूद इनके दिल में गाँव की जमीन, गाँव की हवा, नदी, नहर, बगीचे और गाँव के लोग राज करते रहे। जहाँ शिक्षा का सवाल है, शहर तो बहुत बाद में शुरू हुआ उनके जीवन में, परन्तु जो अनुभव, जो ज्ञान गाँव की इस माटी, पानी और आकाश ने गूंथा उनके भीतर, रोपा उनके भीतर, वह क्या शहर में संभव था ? प्रताब बाबू को याद है, होश के साथ ही वे धान, मकई, गेहूँ, अरहर, मूंग, मसूर, उड़द, मटर, खेसारी, चना, सरसों, राई, तिल, आलू, बैगन, टमाटर, गोभी, साग, मिर्च, जीरा, धनिया, सोआ, मेथी से लेकर आम, जामुन, कटहल, अमरूद, बेर, नारियल, खीरा, ककड़ी, तरबूज आदि तमाम खाने-पीने वाली चोजों, पेड़-पौधों के नाम न केवल जानते थे बल्कि उनके अंग-प्रत्यंगों को पहिचानते थे, उनका जीता-जागता रसानुभव था। वे जानते थे कि

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

धान की रोपाई कब होती है, कब कटनी होती है, कब रब्बी की फसल लगायी जाती है, कब दलहन और तेलहन रोपे काटे जाते हैं। बारहों नक्षत्रों और महीनों के नाम कंठस्थ थे उन्हें। उन्हें आश्चर्य होता कि यह कैसा जीवन है जहाँ लोग उन चीजों के बारे में न जानते, न जानने की उत्सुकता रखते कि जिन चीजों का संबंध उनके प्राणों से है, उन्हें लगाने वाली जगह कहाँ है, लोग कहाँ हैं? प्रताप बाबू को बड़ा दुखद और हास्यास्पद लगता कि पेड़ों को किताबों में पढ़ाया जाता है, टी०वी० में दिखाया जाता है, कापियों में आंका जाता है। खेलों को खेला कम, टी०वी० में देखा अधिक जाता है।

दो महीने हुए थे उन्हें आये हुए। इंजीनियर बेटे ने बहुत आग्रह कर बुलाया था। प्रताप बाबू स्वयं तो एस०डी०ओ० के पद से हाल में ही रिटायर हुए थे। बाकी जीवन के लिए कोई संतोषप्रद शैली ढूँढ़ने की दिशा में सोच रहे थे। कलकत्ता आते हुए सोचा था कि कुछ लंबी अवधि तक रहेंगे, बच्चों को पढ़ाने में मदद करेंगे। असल में सरकारी नौकरी की वजह से अपने बच्चों की पढ़ाई में खुद अपना योगदान नहीं दे पाये थे वे। इसकी कसक उनके भीतर भी थी और बच्चों के मन में भी पिता के लिए एक शिकायत थी। बुढ़ापे में अपनी इस सोच और योजना के पीछे इंगेजमेंट की तलाश भी थी और शायद इस कसक से छुटकारे की भी। पर कलकत्ता आकर तो कहीं इसका द्वार दरवाजा दिखायी न दिया उन्हें। वे आए। काफी खातिर हुई। बेटे ने ड्राइवर और बच्चों के संग चिड़ियाखाना, म्यूजियम, विक्टोरिया मेमोरियल, प्लेनेटेरियम, बेलूरमठ और दक्षिणेश्वर तमाम दर्शनीय स्थलों पर भेजा उन्हें, घुमाया कहना चाहिए। दो-चार दिनों तक उनके आने की गहमागहमी रही घर में। फिर घर के नियमित रूटीन में वे भी एक रूटीन हो गए।

ड्राइवर सुबह बच्चों को लेकर स्कूल जाता था। बहू बच्चों को झटपट तैयार कर देती थी। बेटा बेड-टी लेकर भी साढ़े आठ बजे तक सोया रहता था या बिस्तर पर पड़े-पड़े टी०वी० न्यूज और कीप-फिट देखता रहता था। टी०वी० से न्यूज सुनने की बात प्रताप बाबू की समझ में आती थी पर कसरत को टी०वी० में देखने की बात बिल्कुल समझ में नहीं आती थी। और तो और कसरत को क़ीप-फीट क्यों कहेंगे? योग को योगा क्यों कहेंगे? देसी नामों से क्या इनकी एनर्जी कम हो जाती है? ऐसी आधुनिकता पर कई सवाल थे उनके पास पर जवाब हँसकर टाला जाता था।

दोपहर में बच्चे आते – खा-पीकर थोड़ा आराम करते, फिर शाम जुट जाते पढ़ाई में। प्रताप बाबू ने जैसा कि सोचा था, चाहा कि बहू का यह दायित्व अपने हाथों में ले लें। यही सोच उन्होंने कल बच्चों को बुलाया अपने पास।

पर वे बहू के व्यवहार से हतप्रभ हो गए। प्रताप बाबू हिन्दी और अंग्रेजी में गोल्डमेडलिस्ट थे, बहू को पता था। यह लड़की बहुत पढ़ी-लिखी तो न थी पर अंग्रेजी माध्यम से इंटरमीडियट कर लिया था। उनके मित्र की लड़की थी। प्रताप बाबू के लड़के का उससे प्रेम विवाह था, जिसमें दोनों परिवारों को एक दूसरे का संबंध सहर्ष स्वीकार था। बच्चों को बुलाने पर छूटते ही उसने कहा – बड़ा टफ है इन लोगों का कोर्स, आप से होगा नहीं, स्वर धीमा था पर दृढ़। इधर बच्चों का मूड बन गया, अपने इस नए टीचर से पढ़ने का। इन कुछ दिनों में दादाजी उनके लिए एक मजेदार जीव सिद्ध हो चुके थे – एक एडवेंचर, याकि नए-नए रहस्यों के खदान। इससे भी बड़ी बात थी कि वहाँ किलकने-फुदकने की छूट भी अधिक थी। टीचर के रूप में उनकी परीक्षा भी करनी थी। वे दौड़े चले गए दादाजी के पास। प्रताप बाबू का बहू से आहत मन बच्चों के उत्साह में भुला गया। उन्होंने बच्चों का भारी बस्ता उल्टा-पल्टा। इतनी किताब-कापियाँ तो उन्होंने मैट्रिक तक में भी न देखी थी। बड़ा पाँच साल का था, के०जी० में पढ़ रहा था। छोटा ढाई का, दो-चार दिनों से नर्सरी जा रहा था।

इसलिए प्रायः रोज ही स्कूल जाते समय वह एक तमाशा खड़ा कर देता था। नहीं स्कूल नहीं जाएगा। तब तरह-तरह से मिठाइयाँ, चाकलेट तथा अलग-अलग लोभ देकर उसे भेजा जाता था। प्रताप बाबू के वश में होता तो वे उसे स्कूल जाने से बचा लेते। ढाई साल के बच्चे को स्कूल भेजकर क्या पढ़ाना है भला? उनकी सोच में तो माँ ही अभी पाठशाला है उसकी। अभी उसे स्कूल भेजने का मतलब तो सिर्फ उससे निजात पाना है। बस। वात्सल्य के ऐसे आधुनिकीकरण पर वे ऐसा ही सोचते हैं। पर ऐसा उनके सोचने से क्या हो सकता था। अपनी हैसियत के विलोपन का अहसास पूरी तरह से था उन्हें। उन्हें तो बहुत कुछ अच्छा नहीं लगता था और तो और इन पोतों का नाम तक लेने में परेशानी होती थी उन्हें। जैकी और डॉन। ये भी कोई नाम है भला? नाम एक महत्वपूर्ण संज्ञा है उनकी नजर में। वह तत्काल व्यक्तित्व का परिचायक हो न हो पर उसका अपने आप में एक सांस्कृतिक, ऐतिहासिक या सामाजिक अर्थ गांभीर्य तो प्रकट होना ही चाहिए। वह भी न सही उसके पीछे कम से कम माता-पिता की महत्वाकांक्षा या कल्पना तो झांकती हो कहीं। उन्होंने अपने इन दोनों पोतों का नाम रक्खा था, यशवन्त प्रताप और दिग्विजय प्रताप। स्कूल में बच्चों के ये ही नाम नामांकित थे पर पुकार में ये बदल कर जैकी और डॉन हो गये थे। इस तरह अच्छा न लगना तो कितनी-कितनी बार कितनी-कितनी घटनाओं में घटता चला जा रहा था घर में।

आप को अच्छा नहीं लगता तो न लगे, घर की हवा प्रायः यह कह कर चल देती उन्हें। मानों वह बहुत दिनों से उन्हें बिना पूछे बहती-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

बदलती चली जा रही थी। बहुत सारे मामले उनकी सम्मति के बिना तय करती जा रही थी। जब कि ऐसा भी नहीं था कि अगर वह उनसे मशविरा करती तो हमेशा विपरीत ही पाती। बेटे ने जब गाँव की जमीन बेचकर शहर में फ्लैट बनवाया तब उन्हें विरोध कहाँ हुआ था ? हाँ बासिक भूमि, बापदादों की निशानी को भले ही उन्होंने बिकने न दिया था। बासिक भूमि बेची नहीं जाती उसे किसी को बसने के लिए जरूर दान दी जा सकती है। इसके अतिरिक्त पुराने पलंग, आलमारी, बर्तन सब तो बेचे गए थे, तब उन्होंने कोई रुकावट कहाँ डाली ? कितना कुछ तो स्वीकारते ही चले आ रहे थे, जमाने और अगली पीढ़ी के लिए। लेकिन स्वीकारने के पीछे कोई विचार तो हो। मूल्यहीनता में मूल्य तोड़ने की बात समझ में नहीं आती थी उन्हें। खुद उन्होंने भी तो कितने पुराने मूल्य, कितने खंडहर ध्वस्त किये थे। क्या उन्होंने अपने यहाँ बलिपूजा नहीं रोकी ? क्या उन्होंने विदेशी कपड़ों की होली नहीं जलायी ? क्या उन्होंने अपने माता-पिता को गाँधी और खद्दर का मतलब नहीं समझाया ? तब पंद्रह-सोलह वर्ष के तो थे वे ? सत्य, अहिंसा, चरखा और सत्याग्रह के लिए गाँधी बाबा कैसे लकुटिया लिए मानो हमेशा उनके किशोर मन के आगे-आगे चलते रहते थे। गाँधी उन्हें आधुनिकता के भी प्रतीक लगते थे और क्रांति के भी। उनकी बदौलत ही तो गाँव में जैनी बाबा के दालान में चरखा सेन्टर खुला था और गाँव की महिलाएँ दोपहर से शाम का समय सात्विक सृजन में बिताने लगी थीं। उस सेंटर से पहले तो घर की देहरी लक्ष्मण रेखा थी उनके लिए। कितना अच्छा लगता था प्रताप बाबू को वहाँ अपनी माँ का जाना।

आजादी के आंदोलन की वह लहर, वह ज्वार अपनी आँखों से देखना और उसमें तन-मन से नहाना जीवन का लोमहर्षक अनुभव था उनके लिए। अविस्मरणीय अनुभव। उसका स्मरण आज भी उन्हें आपूर्ण स्वच्छ कर देता है, आलोड़ित और आर्द्र। आर्द्र इसलिए भी कि उपलब्ध आजादी के बाद क्रमशः फैलता हुआ अंग्रेजवाद उन्हें सन्न और हतप्रभ कर देने के लिए काफी था। पूरा देश पूरा युग न उनके हाथ था न उसके लिए वे अपना दोष ढूँढ़ सकते थे, पर अपनी संतानों के लिए अपनी चूक की तलाश में अक्सर पड़ जाते थे। अपने जानते तो उन्होंने अंग्रेजियत को कभी प्रश्रय नहीं दिया था, अपने घर। इंगलिश मीडियम में पढ़ाया नहीं उन्हें। रेडियो हो कि टी०वी०, फ्रिज, गाड़ी ऐसी किसी सुविधावाद को प्रवेश का अवसर न दिया था उन्होंने। बच्चे बिगड़े नहीं थे न बरबाद हुए थे, फिर भी कहीं न कहीं से पिता और संतानों की रुचि का फासला बड़ा हो गया था। किसने सिरजा था उसे ? अपनी हिस्सेदारी कहाँ ? सवाल उठते थे पर जवाब कहाँ मिलता ? वक्त-वक्त पर बच्चों के आरोप पहुँचते थे उनके पास। पिता ने घूस नहीं लिया, तो क्या ? सरकारी सुविधाओं का घरेलू उपयोग न किया तो क्या सरकार ने कोई तमगा दे दिया ? क्या रिटायरमेन्ट की उम्र बढ़ा दी ? ऐसे कितने सारे दोष ढूँढ़ कर रक्खे थे उनके सामने बच्चों ने। इसलिए ऐसा कोई हक ही न बनता था उनका इन पोतों पर। उनके मम्मी-डैडी अपने ढ़ंग से संस्कारित करेंगे उन्हें। फास्ट और मार्डन बनाएँगे उन्हें।

बच्चों की किताबें उलट-पलट कर देखने लगे प्रताप बाबू कि बड़े ने इस नये टीचर की परीक्षा प्रारंभ कर दी।

दादाजी! कैन यू मल्टीप्लाइ द एलेवन इंटू एलेवन ?

दादाजी मुस्कराए – जवाब दिया वन हंड्रेड ट्वेन्टी वन।

एंड एलेवन इंटू ट्वेल्व ? वन थर्टी टू।

एंड ट्वेल्व इंटू ट्वेल्व ?

– वन फोर्टी फोर।

अच्छा फाइव इंटू वन एण्ड हाफ

– सेवन हाफ।

बच्चा चिल्लाया। वेरी गुड, हाउ फास्ट। नाइस यू आर ?

बट वेयर इज योर कैलकुलेटर ?

'इन आवर माइंड।'

उन्होंने याद किया अपने रसिकलाल गुरुजी और उनके बेंतों को। कैसे लाइन लगवाते थे और कैसे लय में एक साथ सबसे पहाड़े रटवाते थे। कभी उनकी बेंत नहीं खानी पड़ी थी उन्हें, यह सोच आज भी गर्व अनुभव करते थे वे। सवय्या, डेढ़ा, ग्यारहा सब याद करवाया था उन्होंने। बीस तक के पहाड़े का प्रचलन तो बहुत बाद में हुआ। फिर केलकुलेटर और कंप्यूटर तो अब यह सब भी खत्म कर रहा है। तन-मन की इतनी बचत किसलिए, यह उनकी समझ के बाहर था। बच्चों के साथ रमते हुए उन्होंने कहा – अच्छा बेटे, चलिए अब एक कविता सुनाइये।

– कविता ? ह्वाट इज कविता ?

'कविता नहीं जानते ? पोएम जानते हो ?'

– यस, शुरू हो गया वह –

'ट्विन्कल ट्विंकल लिटल स्टार.....'

'हिन्दी में कोई ?'

– नो इन हिन्दी। केवल, अ, आ, इ, ई बछ।

'हिन्दी में भी आनी चाहिये बेटे। यह अपनी भाषा है न। मातृभाषा।'

– मातृभाषा ?

'हाँ मातृभाषा है हिन्दी तुम्हारी। मदरटंग कहते हैं इंगलिश में।'

आओ एक गीत सीखो – एक कविता – पूर्व दिशा में–

बच्चों ने अनुकरण किया – पूल्व दिछा में.....

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

– उदित सूर्य को –

– उदित छूल्य को.....

अंदर से बहू ने पुकारा बच्चों को। गीत की लड़ी बीच में ही छूटी, बच्चा भीतर भागा।

प्रताप बाबू के कान में बहू का कड़कता स्वर पड़ा – 'डिड यू फ़िनिस योर होमवर्क?' बच्चा शायद सहमा-सा गुमसुम खड़ा होगा – प्रताप बाबू को लगा। लगा कि उन्हें उसके संकट को शेयर करना चाहिए। वे उठे और अंदर की तरफ बढ़े। तभी सहमता हुआ स्वर पर साफ सुना उन्होंने – आई एम लरनिंग मातृभाषा मम्मी।

– ह्वाट? मम्मी चिल्लायी। तब तक श्वसुर सामने थे।

'इनका होमवर्क करवाइये, वरना स्कूल से कंप्लेन आएगी।'

बहू ने अनुशासित होकर मगर आदेश के स्वर में कहा।

तत्क्षण बच्चा उनको सौंपा तो गया पर उन्हें लगा कि उनसे छीन लिया गया है उसे। वैसे भी जो आदेश था, उसका पालन करना उनके लिए मुश्किल था। उनके लिए मुश्किल था कि बच्चों को आकाश, सूरज, चाँद, सितारे पहले न बताकर स्काई, सन, मून एण्ड स्टार बताए उन्हें। यह तो जाहिर था कि प्रताप बाबू के लिए जितना मुश्किल नहीं था उससे कहीं तकलीफदेह था। फिर भी सहमे बच्चों को गोद में उठाकर ले आए वे अपने कमरे में। कमरे में आते ही बच्चा गले चिपटा और फफककर रो पड़ा। प्रताप बाबू ने उसे जोर से भींचा छाती से प्यार की उष्मा से सेंका। बालपन ही तो था। चोट और सूजन भुलाने में देर न लगी। फिर आँसू से भींगे गालों को लगातार चुंबनों से सुखा दिया। इतने में बहुत संवाद हो चुके थे दादा और पोते में। प्रताप बाबू ने धीरे-से सलाह की उससे। पहले होमवर्क, फिर कथा, कहानी, पहेली गीत सब। बच्चे ने दादा के सहयोग से होमवर्क किया और अंदर ले गया माँ के पास। माँ देखती और वह खड़ा रहता, उतनी देर उसके पास धीरज न था, वापस भागा-भागा पुनः दादाजी के पास।

– दादाजी! नाऊ देट सांग। दादाजी भींग गए अंदर से। पर अब रात हो चली थी, उन्हें पता था कि बच्चों की माँ अभी फिर पुकारेगी उन्हें खाना खिलाएगी। बच्चे सोएँगे फिर। उन्होंने प्यार से गोद में समेटा उसे – 'बेटे अभी आपको एक अच्छी-सी मजेदार कहानी सुनाते हैं, गीत सुबह।'

– कहानी?

'हाँ शार्ट स्टोरी बेटे। उसे अपनी भाषा में कहानी कहते हैं।' प्रताप बाबू ने कल्याण निकाला। ''मत्स्यावतार'' की तस्वीर दिखाते हुए कहानी सुनायी।

–'कितना मजा आया।'

दादाजी! बच्चे के मन में जरूर सवाल खड़े हुए थे कि माँ पहुँची।

'चलो जैकी-डॉन। कम-कम खाना खालो बेटे।'

बच्चा जानता है उपाय नहीं है बचने को।

–'दादाजी। मॉरनिंग में मिलेंगे। तब गीत छिकाएँगे न।'

–'अभी आप खाना खालो, और छो जाओ।

दूसरे दिन रोज की तरह चार बजे प्रायः प्रताप बाबू का स्वर आरंभ हुआ – या कुन्देन्दु तुषार हार धवला.....

बच्चा रजाई में कुनमुनाया। 'मम्मी दादाजी के पास जाऊँ।'

'और थोड़ा सो जाओ बेटे, थोड़ी देर में स्कूल के लिए तैयार होना है ना।'

'नहीं और नहीं। थोड़ी देर के बाद आ जाऊँगा आपके पास,' कहता हुआ रजाई से बाहर निकल आया।

–'जाने दो' यह स्वर बच्चे के डैडी का था। सुबह-सुबह इस तरह नींद का उचटना एकदम से अच्छा नहीं लगता जिन्हें। प्रताप बाबू ने देखा वादे के अनुसार उनका पोता ब्रह्म मुहूर्त में उनके पास पहुँच चुका था। उन्होंने आह्लाद से गोद में उसे उठाया – चूमा और रजाई में गरमा कर आरंभ किया—

– पूर्व दिशा में उदित सूर्य को इन आँखों से देखते हुए, सौ वर्ष तक हम, जीवित रहें, जीवित रहें, जीवित रहें।

बच्चा अनुकरण कर रहा था।

प्रताप बाबू सामने खिड़की की तरफ अपनी तर्जनी से इशारा कर रहे थे जहाँ सूरज अपने निकलने का रक्तिम संकेत फैला रहा था और बच्चा एकटक उस ओर निहार रहा था–

पता नहीं कितना सच था पर प्रताप बाबू को लगा कि अपने बच्चों में हुई चूक का जैसे अब सुधार कर रहे हैं वे।

रीडर, हिन्दी भवन, विश्वभारती
शांतिनिकेतन-७३१ २३५, पश्चिम बंगाल

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org